नामदेव ढसाल

कविता का सर्वहारा स्वर

अरविंद कुमार

जून, 2007 की गर्म और उमस भरी दोपहरी मुझे अब भी उसी तरह याद है, जब मैं नामदेव ढसाल से मिलने उनके अँधेरी स्थित निवास पर गया था। उन दिनों मैं जवाहरलाल नेहरू यूनिवर्सिटी का शोध-छात्र था। विकासशील समाज अध्ययन पीठ (सी.एस.डी.एस.) के सराय कार्यक्रम द्वारा दी गयी स्वतंत्र फ़ेलोशिप के तहत मुझे '1974 : बम्बई के वर्ली में शिव सेना और दलित पैंथर के बीच हुए दंगे' पर अनुसंधान करना था। टेलीफ़ोन पर मेरी बात नामदेव ढसाल की पत्नी और मराठी की नारीवादी साहित्यकार मल्लिका अमरशेख़ से हुई। उन दिनों काफ़ी बीमार चल रहे नामदेव उसी दिन अस्पताल से लौटे थे। पर यह जानने पर कि हम दिल्ली से आये हैं, उन्होंने तुरंत मल्लिका से फ़ोन लिया और हमें घर बुला लिया। उनका कहना था उन्हें अस्पताल कभी भी जाना पड़ सकता है, और ऐसा अक्सर होता रहता है। इसलिए मिलने का समय तय करके किसी शोधार्थी को इंतज़ार नहीं कराया जा सकता। सच तो यह है कि नामदेव उस बीमारी से कभी उबर नहीं पाए। अस्पताल ही उनका दूसरा घर बन गया, पर जीवन से प्रेम और लड़ने का जज़्बा उनकी चमकती आँखों से साफ़ झलकता था। सर्वहारा और मज़दूरों के मुश्किल इतिहास वाली मायानगरी मुम्बई में जीवन गुज़ारते हुए नामदेव ढसाल ने जीवन

29_dhasal_Layout 1 5/7/2014 3:20 PM Page 379

के नरक को क़रीब से देखा और उन विचलित कर देने वाली तस्वीरों को यथावत् दर्शाने के लिए ग़ैर-नफ़ीस ज़ुबान का इस्तेमाल किया। बिना किसी औपचारिक शिक्षा के ही नामदेव ढसाल केवल दलित साहित्य और विद्रोही दलित चेतना के ही नहीं बल्कि इस विषम महानगरी में जुझारूपन के शलाकापुरुष बन कर उभरे। ढसाल अब हमारे बीच नहीं हैं, पर उद्वेलित करने वाली उनकी कविताएँ और उनका चुनौतीपूर्ण जीवन हमें हमेशा झकझोरता रहेगा। ढसाल के पहले कविता संग्रह *गोलपीठा* की ये पक्तियाँ उनके आत्मवक्तव्य की तरह भी पढ़ी जा सकती हैं :

दरगाह जाने के रास्ते[1]

जलता हुआ सूरज
ढलकता हुआ
रात के आगोश में
जा चुका था।

तब मैं पैदा हुआ
उस फ़ुटपाथ पर
गुदड़ियों और चीथड़ों के बीच
और मैं अनाथ हो गया।

मुझे जन्म देने वाली
स्वर्ग चली गयी
हमारे बाप से मिलने।
थक चुकी थी वह
गलियों के नोचने-खसोटने वाली
प्रेतात्माओं से।
वह धो लेना चाहती थी
साड़ी के अंदर के अंधकार को।

और ऐसे मैं बड़ा हुआ
एक इनसान की तरह
जिसके दिमाग़ का फ़्यूज़ उड़ चुका था
उन मल भरी गलियों में
ये कहते हुए
'पाँच पैसे दे दो
पांच गाली ले लो'
दरगाह जाने के रास्ते।

---

[1] यह कविता नामदेव ढसाल के पहले संग्रह से है. इसका मराठी से हिंदी में अनुवाद लेखक ने किया है. दिलीप चित्रे का विशेष धन्यवाद जिनके द्वारा मराठी से अंग्रेज़ी में अनूदित कविताएँ नवयाना द्वारा प्रकाशित *नामदेव ढसाल : पोएट ऑफ़ द अंडरवर्ल्ड* में संकलित हैं. इन कविताओं से इस लेखक को हिंदी में अनुवाद के लिए विशेष मदद मिली.

29_dhasal_Layout 1 5/7/2014 3:20 PM Page 380

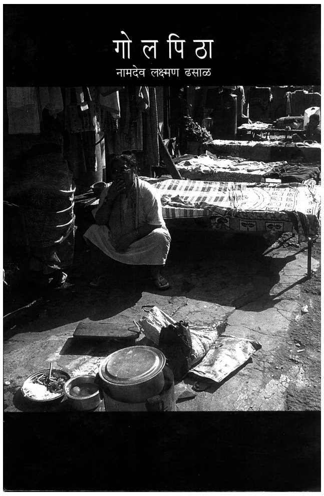

शहरी सर्वहाराओं के बीच बीते ढसाल की ज़िंदगी के ये दिन केवल कविता बन कर ही अभिव्यक्त नहीं हुए, बल्कि उन्होंने एक कर्मठ कार्यकर्ता की हैसियत से अपनी सामजिक ज़िम्मेदारियाँ समझते हुए तिरस्कृत नारी संगठना गठित किया ताकि आये दिन वैश्याओं को मिलने वाले दुत्कार, नशेड़ियों की बदसलूकी और पुलिस की ज़्यादतियों का डट कर प्रतिकार किया जा सके।

गुदड़ियों-चीथड़ों के बीच ...[2]

नामदेव लक्ष्मण ढसाल का जन्म 15 फ़रवरी, 1949 को महाराष्ट्र में महार जाति के अछूत परिवार में हुआ था। पुर कनेसर नाम का उनका गाँव पूना शहर के क़रीब बसा था। नामदेव के पिता लक्ष्मण ढसाल घर की माली हालत और सामाजिक शोषण से तंग आ कर अपने दाल-रोटी के इंतज़ाम के लिए गाँव छोड़ कर मुम्बई (तब बम्बई) चले आये। मध्य-बम्बई में उन्हें एक मुसलमान कसाई की दूकान पर गोश्त ढोने का काम मिल गया। बाद में वे अपने परिवार को भी ले आये और इसी इलाक़े में बसी झुग्गी की ढोर-चाल (इस चाल में ज़्यादातर आबादी ढोर जाति की थी। ढोर महाराष्ट्र की एक अछूत जाति है जिनका मुख्य पेशा मरे हुए जानवरों को उठाना था) में रहने लगे। यह झुग्गी-बस्ती गोलपीठा (गोल का मतलब गोल आकार और पीठा मतलब देशी शराब) नामक चौक पर बसी थी। नामदेव इसी मोहल्ले में खेलते हुए बड़े हुए और उनका पहला कविता-संग्रह 1972 में इसी नाम से आया। उनकी युवावस्था एक टैक्सी ड्राईवर के रूप में ज़्यादातर शराबियों, नशेड़ियों, तस्करों और उन वैश्याओं के बीच बीती जो गोलपीठा के आस-पास बसे कमाठीपुरा (जो एशिया के सबसे बड़े चकलों में से एक है) में अपने जिस्म का सौदा करके रोज़ी कमाती थीं। शहरी सर्वहाराओं के बीच बीते ढसाल की ज़िंदगी के ये दिन केवल कविता बन कर ही अभिव्यक्त नहीं हुए, बल्कि उन्होंने एक कर्मठ कार्यकर्ता की हैसियत से अपनी सामजिक ज़िम्मेदारियाँ समझते हुए तिरस्कृत नारी संगठन गठित किया ताकि आये दिन वैश्याओं को मिलने वाले दुत्कार, नशेड़ियों की बदसलूकी और पुलिस की ज़्यादतियों का डट कर प्रतिकार किया जा सके। इन्हीं दिनों ढसाल समाजवादी और साम्यवादी आंदोलनों के क़रीब आये और जल्दी ही प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के सदस्य और फिर एक कर्मठ कार्यकर्ता बन गये। उन दिनों ढसाल राममनोहर लोहिया और आचार्य नरेंद्र देव से ख़ासे प्रभावित थे। बाद में ढसाल की मुलाक़ात भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (भाकपा) के नेता श्रीपाद अमृत डांगे और इसी पार्टी के सांस्कृतिक संगठन इप्टा (इण्डियन पीपुल्स थियेटर एसोसिएसन) के कार्यकर्ताओं से हुई। भाकपा का ही एक और घटक गिरनी कामगार मज़दूर यूनियन[3] से जुड़े कई कार्यकर्ताओं से भी ढसाल की अच्छी दोस्ती हो गयी। इसी दौरान उनकी मुलाकात हुई मल्लिका अमरशेख़ से जो इप्टा से ही जुड़े प्रसिद्ध रंगकर्मी साहिर अमर शेख़ की बेटी थीं। नामदेव ढसाल और मल्लिका अमरशेख़ का प्रेम उन दिनों मुम्बई में चर्चा का विषय था और इनके प्रेम प्रसंग का चित्रण विद्याधर नायपॉल ने अपनी पुस्तक *इण्डिया : मिलियन म्युटिनीज़ नाउ* में ख़ूबसूरत तरीक़े से किया है। मल्लिका और ढसाल एक दूसरे को कॉमरेड कह

---

[2] यह सम्बोधन उपर्युक्त कविता 'दरगाह के रास्ते' से लिया गया है.

[3] इस संगठन का का मध्य मुम्बई के इस इलाक़े में अच्छा प्रभाव था. इसने इस इलाक़े की कपड़ा मिलों में काम करने वाले मज़दूरों को संगठित करके संघर्षों का आयोजन भी किया था.

29_dhasal_Layout 1 5/7/2014 3:20 PM Page 381

कर सम्बोधित करते थे और जल्दी दोनों जीवन-साथी बन गये। इन्हीं रोमांचकारी दिनों में ढसाल ने मार्क्स, लेनिन, माओ-त्से तुंग और आम्बेडकर को पढ़ना शुरू किये। बिना किसी औपचारिक शिक्षा के जिन उबलते शब्दों में नामदेव ढसाल की रचनात्मकता फूटी, उसकी तुलना निश्चित तौर पर इनकी तुलना मैलकम एक्स[4] और एलरिज़ क्लीवर[5] से की जा सकती है।

कविता का सर्वहारा स्वर

नामदेव ढसाल मराठी दलित साहित्य के कोई पहले कवि नहीं थे। औरंगाबाद में गंगाधर पनतावणे द्वारा *अस्मितादर्श*[6] का प्रकाशन शुरू हो चुका था और कई मराठी युवा लेखकों-कवियों की रचनाशीलता परवान चढ़नी शुरू हो गयी थी। पर इनमें से ज़्यादातर लोग पहले से स्थापित मानक और स्वीकृत लहज़े में ही लिख रहे थे। ढसाल ने पहली बार मराठी भाषा के तथाकथित संस्कृतनिष्ठ सौंदर्यशास्त्र की सीमाओं को लाँघ कर गलियों, झुग्गियों, चालों और शराब के ठेकों पर शहरी सर्वहाराओं द्वारा बोल-चाल में इस्तेमाल की जाने वाली भाषा को अहमियत दी। साहित्यिक-सौंदर्य के बिगड़ जाने की चिंता किये बिना उन्होंने बेबाक होकर आधुनिक मराठी साहित्य की प्रामाणिक परिभाषा बदल कर रख दी। शुरुआत में उन्हें अपने ऊपर भद्दे, भदेस और फूहड़ होने की तोहमत का सामना करना पड़ा, पर उनकी कविताओं ने जल्दी ही अपनी एक विशिष्ट जगह बना ली। शायद यही वज़ह थी कि मराठी के जाने माने नाटककार और आलोचक विजय तेंदुलकर ने ढसाल की तुलना सोलहवीं सदी के भक्त कवि तुकाराम से की। दिलीप चित्रे[7] ने तो बिना किसी झिझक के ढसाल को भारत ही नहीं विश्व-स्तर का कवि क़रार दिया। चित्रे के अनुसार ढसाल की रचना *गोलपीठा* आधुनिक नगरीय काव्य परम्परा में फ़िट बैठती है, कुछ-कुछ उसी तरह जैसे चार्ल्स बौदलेयर की या फिर आर्थर रिम्बो की *उनेसैसन एन इंफेर*। कविताओं में खाँटी और अभद्र शब्दों का इस्तेमाल, नग्न, अक्खड़ और ईश्वरीय निंदा की वज़ह से संभ्रांत और सफ़ेदपोश साहित्यकारों/आलोचकों द्वारा की गयी आलोचना का क़रारा जवाब देते हुए ढसाल ने लिखा :

> हमारे यहाँ विचाधारा की ज़मीन ही ग़ायब है जिसकी लड़ाई साहित्य के हथियार से लड़ी जा सके। हमारे साहित्य में भी कोई विचारधारात्मक आंदोलन नहीं है। न ही हमारे यहाँ कोई ऐसा माहौल

---

[4] मैलकम एक्स अमेरिका के अफ़्रो-अमेरिकी आंदोलन के सशक्त नेताओं में से एक थे. उन्हें बीस वर्ष की उम्र में छोटे-मोटे अपराध के सिलसिले में जेल भेजे गया और जेल के अंदर ही उन्होंने पढ़ाई शुरू की. पहले वे एलिजाह मुहम्मद के नेशन ऑफ़ इस्लाम के सदस्य बने गये, पर जल्दी ही इस संगठन से मोहभंग हुआ और जेल से निकल कर उन्हीने नया संगठन बनाया *ऑर्गनाइज़ेशन ऑफ़ एफ्रो-अमेरिकन यूनिटी.* फ़रवरी, 1965 को तीन अज्ञात (माना जाता है वे नेशन ऑफ़ इस्लाम के सदस्य थे) लोगों ने न्यूयॉर्क शहर में मैलकम की गोली मार कर हत्या कर दी. उनके मरने के कुछ ही दिनों बाद प्रकाशित हुई उनकी आत्मकथा *ऑटोबायोग्राफ़ी ऑफ़ मैलकम एक्स* को बीसवीं सदी की प्रभावकारी कृतियों में गिना जाता है। मालकम का वक्तव्य 'द बैलट ऐंड द बुलेट' एक दुर्लभ और प्रभावशाली भाषण है. जिन लोगों से प्रभावित होकर ब्लैक पैंथर पार्टी बनी उनमें मैलकम एक्स का नाम सर्वप्रमुख है. (जुलाई, 2008 में न्यूयॉर्क सिटी में मैलकम एक्स की सबसे छोटी बेटी मलाक शाबाज़ से लेखक की बातचीत पर आधारित).

[5] एलरिज क्लीवर, 1966 में ओकलैंड, कैलिफ़ोर्निया में बनी ब्लैक पैंथर्स पार्टी फ़ॉर सेल्फ़डिफेंस के संस्थापक मिनिस्टर ऑफ़ डिफेंस के अलावा पार्टी मुख-पत्र के सम्पादक भी थे. जेल में लिखी गयी उनकी पुस्तक *सोल ऑन आइस* अश्वेत साहित्य शृंखला की मजबूत कड़ी मानी जाती है.

[6] *अस्मितादर्श* आम्बेडकर द्वारा संस्थापित मिलिंद कॉलेज, औरंगाबाद के छात्रों और शिक्षकों द्वारा शुरू की गयी त्रैमासिक पत्रिका है. इस पत्रिका के मुख्य सम्पादक प्रोफेसर गंगाधर पंतवाने थे जो मिलिंद कॉलेज में मराठी पढ़ाते थे, वे आजकल सेवानिवृत होकर औरंगाबाद में ही रहते हैं.

[7] बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे दिलीप चित्रे मराठी के कवि, लेखक, अनुवादक, चित्रकार, फ़िल्मकार और ढसाल के क़रीबी मित्र भी थे. 2009 में उनका पुणे में निधन हुआ.

29_dhasal_Layout 1 5/7/2014 3:20 PM Page 382

> है जिसमे नामदेव ढसाल जैसे कवि को दिव्य ज्ञान मिले, राजनीतिक दर्शन का कुछ मंत्र मिले। यहाँ तक कि हमारे शैक्षणिक संस्थानों में भी इस माहौल की कमी है। इसी कमी से हमारा साहित्यिक आंदोलन भी ग्रसित है।[8]

ढसाल का दूसरी कविता संग्रह *मूर्ख महतरयाने डोंगर हलविले* (बेवकूफ़ बूढ़े आदमी ने पहाड़ उठा लिया) 1975 में प्रकाशित हुआ। यह रचना उस समय आयी जब वे मार्क्स और लेनिन को पढ़ रहे थे। मार्क्स के द्वंद्वात्मक भौतिकवाद को समझने और लेनिन की रचना *राज्य और क्रांति* पढ़ते हुए उन्होंने बूर्ज़्वा (मध्यवर्गीय) राजनीतिक दलों की ख़ामियों को ठीक से समझा और कविता व राजनीति के बीच एक तालमेल बैठाने की कोशिश की। उन्होंने सूत्रीकरण किया कि कविता की अपनी राजनीति होती है और इन दोनों को एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। ढसाल के इसी संग्रह में उनकी मशहूर कविता है 'कुत्ते और गणतंत्र का गीत'।

1976 में छपी उनकी लम्बी कविता 'प्रियदर्शिनी' उन्होंने इंदिरा गाँधी की तारीफ़ में लिखी थी जिसे महाराष्ट्र के तब के मुख्यमंत्री शंकर राव चह्वाण ने छपवाया था। कहा जाता है कि इसके एवज में दलित पैंथर्स नेताओं और कार्यकर्ताओं पर चल रहे लगभग तीन सौ पुलिस केस सरकार द्वारा वापस ले लिए गये थे। ख़ुद ढसाल का नाम उन दिनों वांछित मुजरिमों की सूची में था। लेकिन, इंदिरा गाँधी की ख़िदमत में लिखी इस कविता ने ढसाल की कविता और राजनीति दोनों पर ही सवाल खड़ा कर दिया। लेकिन आपातकाल को जायज़ ठहराने का एक राजनीतिक जवाब ढसाल के पास भी था :

> राजनीति का अपना एक नियम है। जब 'सरवाइवल' और 'रिवाइवल' के बीच संघर्ष हो तब ज़रूरी है कि आप थोड़ा सतर्क और रक्षात्मक हो कर खुद को बचाएँ। जो समर्थन मैंने इंदिरा गाँधी को दिया वह कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ़ इण्डिया का राजनीतिक फ़ैसला था और व्यक्तिगत तौर पर भी यह मेरा विवेकपूर्ण और तर्कसंगत निर्णय था।[9]

बहरहाल, अपने सर्वहारा सरोकारों पर पक्के ढसाल ने कांग्रेस पार्टी के विचारों और इंदिरा गांधी के '.गरीबी हटाओ' के आडम्बर से किसी तरह का स्थायी समझौता नहीं किया। 1981 में प्रकाशित ढसाल के अगले संकलन *तुही यत्ता काँची?* (तुम्हारी श्रेणी कौन सी है?) में 'भूख' और 'बाबा साहब को सम्बोधित गीत' जैसी ज्वलंत कविताएँ थीं। इसके बाद 1983 में आया ढसाल का एक और कविता संग्रह *खेल* जिसमें ज़्यादातर कविताएँ व्यंग्य और रोमांच में रची बसी थीं। फिर 1986 में प्रकाशित संकलन में कविताओं के आक्रोश और अवहेलना के स्वर का अंदाज़ा पुस्तक के नाम *गांडू-बगीचा* से ही लगाया जा सकता है। इसी संकलन में एक कविता का शीर्षक है 'नयी दिल्ली, 1985' जिसमें दिल्ली के राजपथ पर मनाये जाने वाले गणतंत्र दिवस का ज़ोरदार मज़ाक उड़ाया गया है।

दलित राजनीति से नामदेव ढसाल के मोहभंग ने कई मोड़ लिए, लेकिन अंततः उनकी शिव सेना से निकटता दलितों और वामपंथियों को ही नहीं, उनके राजनीतिक विरोधियों को भी हज़म नहीं हुई। ढसाल का यह समझौता उसी पार्टी से था जिसके ख़िलाफ़ उन्होंने न केवल वैचारिक, बल्कि वरली के दंगे के समय तो सड़क की लड़ाई भी लड़ी थी। हालाँकि ढसाल औपचारिक रूप से कभी शिव सेना से नहीं जुड़े, लेकिन उन्होंने सेना के मुख-पत्र के लिए कुछ लेख और कविताएँ ज़रूर लिखीं। यह भी कहा जाता है कि जीवन के आख़िरी वर्षों में तंगी और महँगी दवा खरीदने के दबाब में ही वे *सामना* के लिए कभी नियमित और कभी अनियमित तौर पर लिखते।[10] 1995 में प्रकाशित

[8] ~~देखें, दिलीप चित्र (सम्पा.)~~, *नामदेव ढसाल : पोएट ऑफ़ द अंडरवर्ल्ड,* नवयाना, नयी दिल्ली : 69.

[9] वही : 173.

[10] देखें, राजविंदर सिंह (2014), 'अ पोएट ऑफ़ 'माइंडफ़ुल' वर्ड्स', द *हिंदू*, नयी दिल्ली, 19 जनवरी.

29_dhasal_Layout 1 5/7/2014 3:20 PM Page 383

हुआ ढसाल का अगला संग्रह या *सत्तेत जीव रमत नाही* (अब सत्ता में जी नहीं लगता) की विषय-वस्तु इसके शीर्षक से ही स्पष्ट हो जाती है। 2005 में प्रकाशित हुआ ढसाल का एक और संकलन *मी मार्ले सूर्याच्या रथाचे घोड़े सात* (मैंने सूरज के रथ के सातों घोड़ों को मार डाला)। इस पुस्तक की ज़्यादातर कविताएँ भावुकता और गहन दार्शनिक-बोध की हैं। ठीक एक साल बाद बाद 2006 में छपे संग्रह *तुझे बोट धरूँ चलाले आहे मी* (तुम्हारी अँगुली पकड़ कर चल रहा हूँ मैं) में ज़्यादातर कविताएँ ढसाल ने बाबसाहेब के बारे में, उन्हें सम्बोधित करते हुए लिखी हैं और वो समर्पित भी उन्हीं को हैं। इस पुस्तक में छपी एक लम्बी कविता अक्षरशः साबित करती है कि ढसाल ने दक्षिणपंथी राजनीति से किसी तरह का स्थायी समझौता नहीं किया था :

छह दिसंबर[11]

ये कौन हैं— मेरे अपने, मेरे अपने देशवाले,
जो कल बलपूर्वक हमारी धरती पर आ बसे
यही उनका धर्म है
यही उनका भजन है
देवता या धरम?
कल उन्होंने गाँधी को मारा
आज मार डालने चाहते हैं पूरे देश को—
विदेशी आक्रांताओं की कितनी दास्ताँ मैं सुनाऊँ उन्हें?
मूल रूप से मेरे पूर्वज श्यामले-काले अनार्य-द्रविड़ थे
तब आये शक, हूण और कुषाण
तुर्की, ईरानी, अफ़गानी
फ़िर वर्दी में आये गोरे फ़ौजी
मिलती गयी नस्लें और जातियाँ
इस मिटटी के लिए तो कोइ अछूत न था।
बाबासाहेब !
आज दिन है तुम्हारे स्मरण का
तुम्हें पसंद हो-न हो
मुझे भी हाथ उठाने दो— हिंसा करने दो
क्योंकि इसके बग़ैर
होश ठिकाने नहीं आएँगे
इन गुण्डों के, दंगाइओं के।

ढसाल की मराठी में लिखी गयी पुस्तक *आम्बेडकरी चळवळ* (1981) में डॉ. आम्बेडकर के उनके अपने समय के समाजवादी और साम्यवादी आंदोलनों से समीक्षात्मक रिश्ते के बारे में विस्तृत चर्चा है। नामदेव बाबूराव बागुल को मराठी दलित साहित्य का अग्रणी और सबसे प्रभावशाली हस्ताक्षर मानते थे जिनकी रचनाएँ *जेव्हा मी जात चोरली होती* (1963) (जब मैंने जात छिपायी) और *मारण स्वस्ता होत आहे* (1969) (मृत्यु सस्ती हो रही है) आधुनिक मराठी दलित साहित्य में मील का

[11] 'छह दिसंबर' इस संकलन की एक लम्बी कविता है. यहाँ उसकी कुछ प्रासंगिक पक्तियाँ ही ली गयी हैं. मराठी से हिंदी अनुवाद लेखक का है.

तुझे बोट धरून चाललो आहे मी — नामदेव ढसाळ

दलित पैंथर पार्टी में विचारधारा को लेकर असमंजस की स्थिति रही लेकिन वे एक पुख़्ता ख़ाका तैयार करने में लगे रहे। दलित पैंथर के नेताओं ने एक ठोस दस्तावेज़ तैयार किया जिसे दलित पैंथर पार्टी के घोषणापत्र के रूप में छापा गया। इसमें आम्बेडकर और मार्क्सवादी विचारों का मिश्रण था। इलज़ाम लगा कि यह घोषणापत्र 1848 के *कम्युनिस्ट मेनिफ़ेस्टो* और 1966 के ब्लैक पैंथर्स मेनिफ़ेस्टो पर आधारित था।

पत्थर साबित हुईं। बागुल शुरुआती पीढ़ी के लेखक थे जिन्होंने दलित साहित्य-विमर्श को नयी दिशा प्रदान की। ऐसे वक़्त में जब मार्क्सवादी और आम्बेडकरवादी एक दूसरे को संशय की दृष्टि से देख रहे थे, बागुल ने जाति और वर्ग को जोड़ कर देखने की दूरंदेशी प्रस्तावित की। उन्होंने दलित साहित्य को केवल रोष और प्रतिशोध के हथियार के रूप में न देख कर उसे एक सकारात्मक चेतना तैयार करने के दायित्व से आवेशित भी किया।

दलित पैंथरों का विद्रोही तेवर

1960 का उत्पाती दशक पूरी दुनिया को झकझोरने वाला था। अमेरिका में वियतनाम युद्ध का विरोध अपने चरम पर था। नारीवादी आंदोलन, अश्वेतों का नागरिक अधिकार आंदोलन और भारत में नक्सलबाड़ी आंदोलन एक बड़े बदलाव की दस्तक दे रहा था। पर इन सब में सबसे दिलचस्प थी कैलिफ़ोर्निया में 1966 में गठित 'ब्लैक पैंथर पार्टी फ़ॉर सेल्फ़ डिफ़ेंस'। एक दिसंबर, 1955 को मोंटगोमेरी, अलबामा में रोज़ा पार्क्स द्वारा गोरों के लिए बस की सीट छोड़ने से इनकार करने से अमेरिका में नागरिक अधिकार मुहिम की शुरुआत हुई थी। यह आंदोलन शुरुआती दौर में तो काफ़ी लोकप्रिय हुआ, लेकिन दुनिया भर में आये राजनीतिक उग्रता के मोड़ ने अश्वेत नवयुवकों को बेचैन कर दिया। इसी बेचैनी से ब्लैक पॉवर का नारा निकला। आगे चल कर ब्लैक पॉवर और मैलकम एक्स से प्रेरणा लेते हुए एच.पी. न्यूटन, बॉबी सोल, डेविड हिलियार्ड आदि ने ब्लैक पैंथर का गठन किया। इस पार्टी को बनाने का एक तात्कालिक कारण भी था। कैलिफ़ोर्निया स्टेट एसेम्बली ने एक नस्लीय क़ानून पारित किया था जिसके तहत कोई भी अश्वेत व्यक्ति अपने पास हथियार नहीं रख सकता था। इतना ही नहीं, श्वेत पुलिसकर्मी अश्वेतों झुग्गियों में जाकर युवकों को छोटे- मोटे अपराधों, जैसे चोरी और बदमाशी, के बहाने गोली तक मार देते थे। ब्लैक पैंथर पार्टी ऐसी ही ज़्यादतियों के ख़िलाफ़ खड़ा हुआ था। इधर भारत में और ख़ास कर महाराष्ट्र में दलितों पर ऊँची जातियों के अत्याचार बढ़ गये थे। दूसरी तरफ़ इन अत्याचारों के ख़िलाफ़ एक राजनीतक गोलबंदी भी जारी थी। आम्बेडकर के देहांत के बाद रिपब्लिकन पार्टी ऑफ़ इण्डिया कांग्रेस पार्टी की पिट्ठू बन कर दलित अस्मिता के सवालों पर पूरी तरह चुप थी। कई जगह दलित युवतियों को नंगा घुमाया गया, उनसे बलात्कार करके मार डालने की घटनाएँ हो रही थीं। भारतीय संसद द्वारा 1955 में पास किया गया छुआछूत विरोधी कानून ऐसे जाति आधारित घृणित अत्याचारों को रोकने में पूरी तरह से विफल था। ऐसी भीषण स्थिति का सामना करने के लिए नामदेव ढसाल ने अपने विद्रोही कवियों और साथियों राजा ढाले, जे.वी. पवार, अर्जुन डांगले, अविनाश महातेकर आदि के साथ 9 जुलाई, 1972 को मुम्बई में दलित पैंथर पार्टी गठित की।

दलित पैंथर को ब्लैक पैंथर से ही प्रेरणा मिल रही थी।[12] आरम्भ में दलित पैंथर पार्टी में विचारधारा को लेकर असमंजस की स्थिति रही लेकिन वे एक पुख़्ता ख़ाका तैयार करने में लगे रहे।

---

[12] अरविंद कुमार (2009), *डिस्क्रिमिनेशन ऐंड रेज़िस्टेंस : अ कम्पेरेटिव स्टडी ऑफ़ द ब्लैक मूवमेंट्स इन द यूएस ऐंड दलित मूवमेंट इन इण्डिया,* (अप्रकाशित पी. एच-डी प्रबंध) जवाहरलाल नेहरू युनिवर्सिटी, नयी दिल्ली.

29_dhasal_Layout 1 5/7/2014 3:20 PM Page 385

दलित पैंथर के नेताओं ने एक ठोस दस्तावेज़ तैयार किया जिसे दलित पैंथर पार्टी के घोषणापत्र के रूप में छापा गया। इसमें आम्बेडकर और मार्क्सवादी विचारों का मिश्रण था। इलज़ाम लगा कि यह घोषणापत्र 1848 के *कम्युनिस्ट मेनिफ़ेस्टो* और 1966 के ब्लैक पैंथर्स मेनिफ़ेस्टो पर आधारित था। जो भी हो, एक बात तय थी कि इस पार्टी की विचारधारा रिपब्लिकन पार्टी ऑफ़ इण्डिया[13] जैसे कार्यक्रमों से से बिल्कुल भिन्न थी। परिवेश ऐसा था कि दलित पैंथर्स के इंक़िलाबी जज़्बे की अनदेखी नहीं की जा सकी। घोषणापत्र ने दलित शब्द को नये अंदाज़ से परिभाषित किया। इस नयी परिभाषा के हिसाब से अनुसूचित जाति ही नहीं, इसके अलावा शोषित जनता, स्त्रियाँ (चाहे किसी भी जाति और समुदाय की हों) और आदिवासी भी दलित की श्रेणी में थे। इनके अलावा नव-बौद्ध, ग़रीब कामगार, भूमिहीन किसान भी इसमें शामिल कर लिए गये थे। इस व्यापक परिभाषा से दलित श्रेणी को एक सुदृढ़ सर्वहारा वर्ग की श्रेणी का रूप दे दिया गया था। पार्टी के घोषणापत्र ने भूस्वामियों, पूँजीपतियों, साहूकारों, उनके चमचों और उनको समर्थन करने वाली सरकारों को दलित पैंथर्स का घोर दुश्मन बताया। जाति और वर्ग के ख़िलाफ़ लड़ने वाली सभी शक्तियों को उन्होंने अपना दोस्त माना। घोषणापत्र ने दलितों के ज्वलंत मुद्दों— रोटी, कपड़ा, मकान, ज़मीन और रोज़गार पर भी विशेष प्रकाश डाला। पैंथर्स के अनुसार इन सारी समस्याओं का सीधा संबंध अर्थशास्त्र से थे। दमनकारी व्यवस्था के साथ लड़ने का संकल्प घोषणापत्र में साफ़ दिखा :

> हम संगठन बनाएँगे मज़दूरों का, दलितों का, भूमिहीन गरीब किसानों का— शहरों के कारख़ानों में, सभी गाँवों में। दलित के ख़िलाफ़ हुए किसी भी अत्याचार का हम मुँह तोड़ जवाब देंगे। हम जाति प्रथा और वर्ण व्यवस्था समाप्त करने की कोशिश करेंगे जो लोगों के ग़रीबी और बेचारगी पर पनपती है और पलती है तथा लोगों का शोषण करती है। इससे लड़ कर हम दलितों को मुक्त करेंगे। वर्तमान न्यायिक व्यवस्था और राज्य सत्ता ने हमारे सपनों को चकनाचूर कर दिया है; धूल में मिला दिया है। यह लोकतंत्र है। दलित पैंथर्स के कार्यकर्ता और समर्थक दलितों के निर्णायक संघर्ष के लिए तैयार रहें।[14]

कुल मिला कर विचारधारात्मक रूप से दलित पैंथर्स न आम्बेडकरवादी थे, और न ही नक्सलवादी। आम्बेडकर आर्थिक और सांस्कृतिक सवालों को मिला कर नहीं देखते थे, दूसरी तरफ़ नक्सलवादी आंदोलन का परिवेश मूलतः ग्रामीण था इसलिए वह माओ से प्रभावित कृषि क्रांति में समस्याओं का हल देख रहा था।[15] इसके विपरीत दलित पैंथर्स एक शहरी परिघटना थी जिसने अपनी विचारधारा में मार्क्सवादी (आर्थिक दृष्टिकोण) और आम्बेडकरवादी (सांस्कृतिक दृष्टिकोण) को सम्मिलित किया था। हालाँकि उनके कई विचार मार्क्सवादी शब्दवाली से आये थे और वे अमेरिका की ब्लैक पैंथर पार्टी से प्रेरित थे, फिर भी वे मार्क्सवादी वर्ग संघर्ष के विचार से सहमत नहीं थे। उनके वैचारिक असमंजस की यह भी एक वज़ह थी। 1974 में मध्य मुम्बई के वर्ली में शिव सेना और दलित पैंथर्स के बीच जो हिंसक संघर्ष हुआ, उसने इस पसोपेश को और बढ़ा दिया। मध्य बम्बई के संसदीय उपचुनाव के दौरान दलित पैंथर्स द्वारा चुनाव का बहिष्कार करने या कम्युनिस्ट पार्टी का समर्थन करने के मुद्दे पर शिव सेना और दलित पैंथर्स के बीच संघर्ष भड़का था।[16] चुनाव मेंसमर्थन

---

[13] रिपब्लिकन पार्टी ऑफ़ इण्डिया के स्थापना की घोषणा डॉ. आम्बेडकर ने 1956 में की थी लेकिन इसी छह दिसंबर 1956 को ही उनका देहांत हो गया. पार्टी का संगठन उसके बाद बना.

[14] दलित पैंथर पार्टी मैनिफ़ेस्टो, 1973.

[15] देखें, गेल ओमवेट (2006), *दलित विज़न : द एंटी क़ास्ट मूवमेंट ऐंड द कंस्ट्रक्शन ऑफ़ इण्डियन आइडेंटिटी,* ओरिएंट ब्लैकस्वान, नयी दिल्ली : 44.

[16] रिपब्लिकन पार्टी (जो तथाकथित दलित हितों की पार्टी थी) के उमीदवार ने कांग्रेस का समर्थन कर दिया था जिसे पास पहले से ही शिव सेना का समर्थन हासिल था. ऐसी स्थिति में दलित पैंथर (जिसका नव-बौद्धों के बीच अच्छी पैठ थी) द्वारा बहिष्कार करने से भाकपा उम्मीदवार रोज़ा देशपाण्डे की जीत हुई थी जो श्रीपाद अमृत डांगे की बेटी थीं.

29_dhasal_Layout 1 5/7/2014 3:20 PM Page 386

और बहिष्कार के मुद्दे से ही नामदेव ढसाल और राजा ढाले के ख़ेमों के बीच विवाद धीरे- धीरे बढ़ता गया। और फिर ढसाल पर कम्युनिस्ट होने का आरोप लगा कर पार्टी से निष्काषित कर दिया गया। इस पर ढसाल की प्रतिक्रिया इस प्रकार थी :

> 1975 में अचानक राजा ढाले ने मुझ पर मार्क्सवादी होने का आरोप लगाया और कहा कि मार्क्सवाद और आम्बेडकरवाद परस्पर एक दूसरे के विरोधी हैं। मेरी अपने पार्टी ने ही मुझे बहिष्कृत कर दिया जिस पार्टी का मैं संस्थापक सदस्य था। मार्क्स और आम्बेडकर के विचारों में विरोधाभास है और ये बहस 1938 से चल रही है। मैं इसका आख़िरी शिकार बना।[17]

वर्ली के दंगे से जहाँ एक तरफ़ दलित पैंथरों को बम्बई और महाराष्ट्र के बाहर पहचान मिली, वहाँ पार्टी की अंदरूनी लड़ायी बढ़ती गयी और वह कई खेमों में बँटती, बिखरती चली गयी। बहुत से जानलेवा हमलों, लगातार ख़राब स्वास्थ्य और राजनीति से मोहभंग के बावजूद ढसाल सर्वहारा का स्वर बुलंद करते रहे। आख़िरकार उन संस्थानों और सत्ता-केंद्रों ने भी नामदेव ढसाल को 1999 में पद्मश्री और 2004 में साहित्य अकादेमी लाइफ़ टाइम अचीवमेंट अवार्ड से सम्मानित किया जिनके अभिजात्य का उन्होंने आजीवन विरोध किया था। 15 जनवरी, 2014 को सर्वहारा के समृद्ध साहित्य की एक विरासत छोड़ कर नामदेव ढसाल हमेशा के लिए चले गये।

[17] दिलीप चित्रे, वही : 169.